**ओ३म्**

**‘ईश्वर को क्यों जानें, जानें या न जानें?’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

हमारे एक लेख **‘ईश्वर सर्वज्ञ है तथा जीवात्मा अल्पज्ञ है’** को गुरूकुल में शिक्षारत एक ओजस्वी युवक व हमारे मित्र ने पसन्द किया और अपनी प्रतिक्रया में कहा कि लोग ईश्वर को मानते नहीं है अतः एक लेख इस शीर्षक से लिखें कि हम ईश्वर को क्यों मानें? हमें यह सुझाव पसन्द आया और हमने इस विषय पर लिखने का उन्हें आश्वासन दिया। ईश्वर को हम मानें या न मानें, परन्तु पहले उसे जानना आवश्यक हैं। जानना क्यों है? इसलिये कि यदि हमें उससे कुछ लाभ होता या हो सकता है तो हम उससे वंचित न रहें। यदि उससे कुछ लाभ नहीं भी होता है तो फिर उसे जानकर उसको मानना छोड़ सकते हैं। प्रश्न का मूल यह भी है कि क्या ईश्वर है? इसका उत्तर है कि ईश्वर हो भी सकता है और नहीं भी। यदि नहीं है तो फिर एक प्रश्न जिसका उत्तर ढूंढना होगा वह यह है कि यदि नहीं है तो यह ब्रह्माण्ड कैसे बना, किसने बनाया व क्यों बनाया? प्राणी जगत को कौन बनाता है और इनका नियमन किसके द्वारा होता है? कोई भी क्रिया यदि होती है तो उसके कर्ता का होना अवश्यम्भावी है। यदि कर्ता न हो तो क्रिया होना सम्भव नहीं है। संसार में हम अपनी आंखों से जिन सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि पदार्थों और प्राणी जगत को देखते हैं उनका कर्ता अर्थात उन्हें बनाने वाला कोई न कोई तो अवश्य ही है। यदि नहीं है तो अपने-आप वा स्वतः तो कुछ बनेगा नहीं। संसार यथार्थतः अर्थात् सचमुच में है, यह इस बात का प्रमाण है कि संसार का कर्ता अर्थात् इसका बनाने वाला अवश्य है। उसका अस्तित्व सिद्ध हो जाने के बाद उसके स्वरूप का तर्क, बुद्धि वा युक्तिसंगत ज्ञान होना आवश्यक है अन्यथा फिर अन्ध-विश्वास अपना काम करते हैं और हमारा जीवन अज्ञान पूर्ण कृत्यों व झूठी आस्था को समर्पित हो जाता है।

**मनमोहन कुमार आर्य**

 उस स्रष्टा का स्वरूप जानने के लिए उसका पहला गुण उसकी सत्ता का होना है अतः इस कारण से वह सत्य पदार्थ कहा जाता है। रचना हमेशा चेतन तत्व द्वारा होती है, जड़ या निर्जीव तत्व के द्वारा नहीं होती, अतः स्रष्टा का एक स्वरूप या गुण उसका चेतन तत्व होना है जिसे चित्त कहा जाता है। अब कोई चेतन सत्ता जिसमें दुख व क्लेश हो, वह तो संसार को बना नहीं सकती, अतः उसका समस्त दुःखों से रहित होना और आनन्द स्वरूप होना भी सिद्ध होता है। इसके बाद हम इस ब्रह्माण्ड के स्वरूप पर ध्यान देते हैं और विचार करते हैं तो हमें यह अनन्त परिमाण वाला दिखाई देता है। रचना व रचयिता का एक स्थान पर होना आवश्यक है। हम देहरादून में बैठे हुए जहां पर हैं, वही पर कोई रचना कर सकते हैं। देहरादून में या किसी स्थान पर स्थित कोई व्यक्ति वहां से 5 या 10 किलोमीटर वा कम या ज्यादा दूरी पर कोई रचना नहीं कर सकते। अतः इस संसार को अनन्त परिमाण में देखकर ईश्वर भी अनन्त व सर्वव्यापक, सर्वदेशी सिद्ध होता है और उसका सूक्ष्मतम होना भी आवश्यक है। इस ब्रह्माण्ड को बनाने के लिए अल्प शक्ति से काम नहीं चलेगा अतः उसका सर्वशक्तिमान होना भी अपरिहार्य है। कोई भी उपयोगी रचना के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है। ज्ञान की कमी से रचना करने पर उसका उद्देश्य पूरा नहीं होता तथा रचना में दोष आ जाते हैं। जिस सत्ता से यह सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, मानव शरीर व अन्य प्राणी जगत बना है, वह कोई साधारण ज्ञानी नहीं है अपितु उसमें ज्ञान की पराकाष्ठा है, ऐसी सत्ता वह सिद्ध होती है। अतः उसे सर्वज्ञानमय या सर्वज्ञ कहा जाता है। इस प्रकार से अन्यान्य गुणों का समावेश उस सत्ता में सिद्ध होता व किया जा सकता है। महर्षि दयानन्द ने इस सत्ता के स्वरूप को एक वाक्य में इस प्रकार से कहा है – **‘ईश्वर सत्य-चित्त-आनन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।‘**

 ईश्वर के इस स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर उसके अन्य कार्यों को भी विचार कर जान लेते हैं। ईश्वर ने प्राणी जगत को बनाया है जिसमें मनुष्य, पशु, पक्षी अर्थात् समस्त थलचर, नभचर तथा जलचर आदि सम्मिलित हैं। इन सभी प्राणियों के शरीरों में हम एक-एक जीवात्मा को पाते हैं। इन सूक्ष्म, एकदेशी, ससीम, चेतन तत्व जीवात्माओं को ही ईश्वर ने भिन्न-भिन्न प्राणि-शरीर प्रदान किये हैं जिनसे यह सुख व दुखों का भोग करने के साथ कर्म में प्रवृत्त रहते हैं। सभी प्राणियों के सुख-दुख के जब कारणों की विवेचना करते हैं तो ज्ञात होता है कि शुभ व अशुभ, अच्छे वा बुरे तथा पुण्य वा पाप कर्मों को मनुष्य योनि में लोग करते हैं। शुभ, अच्छे व पुण्य कर्मों का फल सुख दिखाई देता है और अशुभ, बुरे वा पाप कर्मों का फल दुःख दिखाई देता है। अतः ईश्वर जीवात्माओं को कर्म के फल प्रदान करने वाला तथा सभी प्राणियों को उनके शुभाशुभ कर्मों के आधार पर मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनियेां में जन्म देता है, यही तर्क व युक्तियों से सिद्ध होता है। यह भी ईश्वर के स्वरूप व कार्यों का एक मुख्य अंग है।

 ईश्वर का स्वरूप विदित हो जाने के बाद हमें थोड़ा सा अपने स्वरूप पर भी विचार करना उचित प्रतीत होता है। हम सब चेतन तत्व है और हमारी सत्ता यथार्थ अर्थात् सत्य है। हमारी सत्ता काल्पनिक व अन्धकार में रस्सी को देख कर सांप की भ्रांति होने जैसी नहीं है अपितु यह पूर्णतः सत्य है व उसका अस्तित्व यथार्थ है। यह अस्तित्व अनुत्पन्न, अनादि, नित्य, अविनाशी, अमर सिद्ध होता है। कोई मनुष्य दुःख नहीं चाहता परन्तु वह इसमें विवश है। जब-जब उसे दुःख, रोगादि व दुर्घटनाओं, आर्थिक तंगी, अशिक्षा, अज्ञान आदि के कारण होता है तो उसमें वह विवश व परतन्त्र होता है। इससे यह सिद्ध होता है दुःख का कारण उसके अशुभ कर्म वा उन कर्मों के ईश्वर द्वारा दिये जाने वाले फल हैं जो वर्तमान व पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर ईश्वर से उसे जीवन भर मिलते रहते हैं। इस प्रकार से जीव की सत्ता अनादि, नित्य व इसका स्वरूप सत्य व चेतन, एकदेशी, सूक्ष्म, आकार-रहित, अजर, अमर, जन्म-मरण-धर्मा सिद्ध होता है।

 ईश्वर के बारे में संक्षेप में तो हम जान ही गये हैं। उसका अस्तित्व निभ्र्रान्त रूप से सिद्ध है। अब उसको माने या न मानें, इस प्रश्न पर विचार करते हैं। जो पदार्थ यथार्थ रूप में हैं उनको मानना ही ज्ञान व न मानना अज्ञान कहलाता है। ईश्वर है तो उसे तो मानना ही पड़ेगा। अब दूसरी प्रकार का मानना यह है कि हम उससे क्या कोई लाभ ले सकते हैं या स्वयं को होने वाली हानियों से बचा सकते हैं? इसका उत्तर है कि हम उसका चिन्तन कर उसे अधिक से अधिक जानने का प्रयास करें। इस कार्य में हम सत्यार्थ प्रकाश आदि सत्य के अर्थ का प्रकाश करने वाले ग्रन्थ की सहायता भी ले सकते हैं। मनुष्य को ज्ञान नैमित्तिक साधनों से प्राप्त होता है। यह ज्ञान माता-पिता-आचार्यों से भी प्राप्त होता है या फिर पुस्तकों का अध्ययन कर ज्ञान हो सकता है। माता-पिता-आचार्यों व पुस्तकों की बहुत सी या कुछ बातें अज्ञान व अविवेक पूर्ण भी हो सकती है जो कि उनकी ज्ञान की क्षमता पर निर्भर होती है जो कि सीमित है। कोई भी मनुष्य पूर्ण ज्ञानी अर्थात् सर्वज्ञ कदापि नहीं हो सकता। ससीम व एकदेशी होने के कारण जीवात्मा अल्पज्ञ अर्थात् अल्प ज्ञान प्राप्त करने वाली है। इसे ज्ञान वृद्धि के लिए माता-पिता-आचार्यों की अपेक्षा होती है जो इससे अधिक जानते हों। अतः सत्य ज्ञान की पुस्तकों को पढ़कर ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। पुस्तकों का ज्ञान भी दो प्रकार का होता है। अधिकांश पुस्तके सत्य व असत्य का मिश्रण होती हैं। अनेक पुस्तकें, धार्मिक व सामाजिक सभी प्रकार की, क्षुद्राशय मनुष्यों ने अपनी अज्ञानता व कुछ स्वार्थों के कारण बनाई हुई होती हैं वा हैं जिसमें सत्य के साथ असत्य मिश्रित है और ऐसी पुस्तकें विष मिश्रित अन्न या भोजन के समान हैं। प्रायः अल्पज्ञानी मनुष्यों द्वारा ही निर्मित सभी पुस्तकें हैं और सभी इसी कोटि में आती है। चार वेद यद्यपि ज्ञान की पुस्तकें हैं परन्तु यह किसी मनुष्य की रचना न होकर संसार को बनाने वाले और चलाने वाले सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर की रचनायें हैं। इन पुस्तकों में निहित ज्ञान को ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में चार श्रेष्ठ बुद्धि व स्वस्थ शरीरधारी पुण्यात्माओं को प्रदान किया था। इन्हीं वेदों के आधार सतत वेदों का अघ्ययन, चिन्तन, उपासना करके हमारे प्राचीन ऋषियों ने वेदानुकूल सत्य ज्ञान की पुस्तकेों को रचा था। ऐसे ग्रन्थों में वेदों से इतर शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, निघण्टु, ज्योतिष, उपनिषद व दर्शन, प्रक्षेप रहित मनुस्मृति आदि ग्रन्थ हैं। इनमें सत्यार्थ प्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका आदि ग्रन्थ भी सम्मिलित होते हैं।

 इन पुस्तकों का अध्ययन कर सत्य-सत्य ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है। इनसे यह जाना जाता है कि हम ईश्वर से जीवन में जो चाहें, वह प्राप्त कर सकते हैं। उसके लिए हमें अपनी प्रार्थना के अनुरूप पात्रता को प्राप्त करना होता है। संसार में धन व सम्पत्ति आवश्यक हैं। इसकी प्राप्ति के लिए मनुष्यों का स्वस्थ शरीर होना आवश्यक है। अतः स्वास्थ्यवर्धक भोजन, व्यायाम व प्राणायाम आदि करके शरीर को स्वस्थ रखना चाहिये और रोगादि होने पर उचित उपचार करना चाहिये। इसके अतिरिक्त संसार के सबसे बहुमूल्य पदार्थ ईश्वर को जानकर उसकी प्राप्ति के लिए स्तुति, प्रार्थना व उपासना करनी चाहिये। इससे ईश्वर से मित्रता व पे्रम सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इसकी अन्तिम परिणति ईश्वर साक्षात्कार के रूप में होती है। यह ऐसी अवस्था होती है कि इसे प्राप्त कर कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता। मनुष्य के आधिदैविक, आधिभौतिक व आध्यात्मिक, इन तीन कारणों से होने वाले सभी दुःखए ईश्वरोपासना एवं सदकर्मों से दूर हो जाते हैं। जीवन पूर्णतः सुखी हो जाता है। इस स्थिति में पहुंच कर मनुष्य दूसरों का मार्गदर्शन, उपदेश व प्रवचन द्वारा तथा सरल भाषा में अज्ञान व अन्धविश्वास रहित तथा ज्ञान से पूर्ण पुस्तकें लिखकर कर सकता है। ऐसे व्यक्ति की मृत्यु होने पर वह जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है। कारण यह है कि जन्म व मरण हमारे कर्मों के आश्रित हैं और जब हम कोई अशुभ कर्म करेंगे ही नही तो फिर जन्म होगा ही नहीं। यह मोक्ष की अवस्था कहलाती है। जिस प्रकार अच्छा व श्रेष्ठ कार्य करने पर माता-पिता-आचार्यों व शासन से पुरस्कार मिलता है, उसी प्रकार से उपासना की सफलता व अशुभ कर्मों का क्षय हो जाने पर पुरस्कार स्वरूप ईश्वर केे द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। यह मोक्ष ऐसा है कि इसमें जीवात्मा को ईश्वर के द्वारा सुखों की पराकाष्ठा आनन्द की प्राप्ति होती है। इसकी अवधि 31 नी 10 खरब 40 अरब वर्षों की होती है। इतनी अवधि तक जीवात्मा जन्म व मृत्यु के चक्र से छूट कर ईश्वर के सान्निध्य में रहकर आनन्द का उपभोग करता है। मोक्ष व उपासना के बारे में वेदों व ऋषियों के ग्रन्थों को पढ़कर निर्भ्रांत ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

 हमने अपने अध्ययन में पाया कि महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, पं. गुरूदत्त विद्यार्थी, पं. लेखराम, महात्मा हंसराज, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती आदि महात्माओं ने वेदों एवं इतर वैदिक साहित्य का अध्ययन कर ईश्वर, जीवात्मा तथा प्रकृति के सत्य स्वरूप को जाना था। उनका जीवन ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना के साथ वैदिक कर्तव्यों का निर्वहन अर्थात् पंच महायज्ञ आदि कर्मों को करने के साथ समाज के हितकारी परोपकारी, सेवा व समाजोन्नति तथा देशोन्नति के कार्यां में व्यतीत हुआ। यह सभी लोग प्रातः व सायं नियमित रूप से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते थे। इससे यह बात भी ज्ञात होती है कि इन महात्माओं की गुणों व कर्मों की समानता व पवित्रता के कारण ईश्वर से पूर्ण निकटता थी। समाज के हित के सभी सेवा व परोपकार आदि कार्य भी इन्होंने किये। स्वामी श्रद्धानन्द, पं. गुरूदत्त विद्यार्थी, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती तथा महात्मा हंसराज शिक्षा जगत से जुड़े हुए थे और इस क्षेत्र में इन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया। पं. लेखराम ने महर्षि दयानन्द जी के जीवन चरित की खोज के साथ वैदिक धर्म का प्राणपन से प्रचार किया और अगणित स्वजातीय बन्धुओं को विधर्मी होने से बचाया और अन्य मतों के बन्धुओं में वैदिक मत का प्रचार कर उन्हें वैदिक धर्म का प्रेमी व प्रशंसक बनाया। इन सभी बन्धुओं ने उपासना के द्वारा ईश्वर से अत्यन्त निकटता प्राप्त की हुई थी। महर्षि दयानन्द तो असम्प्रज्ञात समाधि को भी सिद्ध किये हुए थे। अन्य महात्मा वा महापुरूष भी असम्प्रज्ञात समाधि के अत्यन्त निकट थे जो कि मोक्ष व जीवन की पूर्ण सफलता का द्वारा व आरम्भ है। इन सभी महात्माओं ने पवित्र जीवन व्यतीत किया जो हम सभी के लिए आदर्श एवं अनुकरणीय है। समाज में इनका अति उच्च एवं सम्माननीय स्थान था और इनका व्यक्तिगत जीवन भी सन्तोष रूपी सुख से भरपूर था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि इन जैसा जीवन ही सभी मनुष्य जीवनधारी प्राणियों का होना अभीष्ट है।

 ईश्वर को क्यों जाने ? जाने या न जाने? का उत्तर हमें मिल चुका है। यदि हमने ईश्वर को जान लिया तो हम निश्चय ही उसे मानेगे भी अर्थात् अपने लाभों के लिए उसकी स्तुति, प्रार्थना व उपासना वेद के अनुसार करेंगे जिसका परिणाम होगा कि हम सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त होकर सदा आनन्द में विचरण करने वाले होकर मोक्ष को प्राप्त कर सकेंगे। आईयें, ईश्वर के सत्य स्वरूप को जानने का प्रयास करें, सत्साहित्य का अध्ययन करें और अज्ञान, ढ़ोग, पाखण्ड, अन्धविश्वासों व कुरीतियों को तिलांजलि दे दें क्योंकि इनसे बन्धन पैदा होते हैं और जीवन सुख-दुख के चक्र में फंस कर असफल होता है।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः 09412985121**